वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष १३, शुक्रवार

दि.१८-२-१९६६, गाथा-९, प्रवचन नं.-२९

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। उसकी चौथी ढाल के आठ श्लोक हुए। नववां श्लोक।'**पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद का निषेध और तात्पर्य की बात।**'

पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख विलखौ मत भाई;
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बातकी बात यही, निश्चर उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।।९।।

देखो ! क्या कहते हैं ?'**हे आत्मार्थी प्राणी !**''दौलतरामजी' संबोधन करते हैं कि, '**(पुण्य-फलमांहि) पुण्य के फल में हर्ष न कर,...**' पूर्व का कोई पुण्य बँधा हो, दया, दान, व्रत, भक्ति अथवाकरुणा, कोमलता के शुभभाव से पुण्य बँधा हो, उस पुण्यबंध के बाह्य की अनुकूल सामग्री मिलती है।धन, मकान, दुकान, कीर्ति, निरोगता (मिलना) ये सब पूर्व के पुण्य का फल है। समझ में आया ? वर्तमान प्रयत्न का फल नहीं। लक्ष्मी मिलना, धन, मकान, दुकान आधि चलना, दुकान चलना, मकान मिलना, कीर्ति मिलनी, शरीर में निरोगता रहना,

अनुकूल परिवार, समाज आदि रहना, अनुकूल भागीदार मिलना। भागीदार को क्या कहते हैं ? हिस्सेदार ये सब पूर्व के पुण्य का फल है। उसमें हर्ष करना, मिथ्यादृष्टि उसमें प्रसन्नता मानते हैं। समझ में आया ? भाई ! यह क्या कहा ? देखो अन्दर ! कहाँ गये ? देखो अन्दर है ?

'**पुण्य फल में हर्ष न कर,...**' अफना स्वरूप आनन्द, ज्ञानमूर्ति है, उसकी जिसको दृष्टि हुई है – ऐसे सम्यग्ज्ञानी को पूर्व के पुण्य के फल में हर्ष नहीं होता। वह तो पुद्गल की पर्याय है। पुण्यभाव से पूर्व का कर्मबंधन हुआ, उस कर्मबंधन के कारण से उसमें उसके काल में संयोग मिला। लक्ष्मी, मकान, दुकान चले। कोई आदमी ऐसा माने कि,हम व्यवस्थित व्यवस्था करते हैं तो दुकान चलती है, मकान चलता है और नौकरचाकर सब बराबर बुद्धि का बल इस्तमाल करते हैं तो व्यवस्थित काम रहता है। कहते हैं कि, मूढ हो।

मुमुक्षु :– सयाने आदमी...

उत्तर :– सयाना किसे कहना ? समझ में आया ? सयाना... सयाना कहते हैं न ? चतुर। आपकी भाषा में चतुर (कहते हैं)। किसेचतुर कहना ? यहाँ न कहते हैं। पूर्व का पुण्य जो बंधा है...

शास्त्र में दान के अधिकार में एक बात चली है। दान देने की बात चलती है न ? वहाँ 'पद्मनंदि आचार्य' महाराज ने ऐसा अधिकार लिया कि, भैया ! पूर्व के पुण्य के कारण तुझे लक्ष्मी आदि मिली है (तो), जैसे कौआ... कौआ होता है न ? उसका उकडिया... उकडिया को क्या कहते हैं ? भैया ! खुरचन... खुरचन होता है न ? खीचडी, चावल आदि का।खुरचन मिलती है तो कौआ अकेला नहीं खाता। समझ में आया ? खीचडी, चावल नीचे (बचता है)। माल-माल खा लेते है बाद में खुरचन होता है, उसे बाहर निकाल देते हैं। मकान के पास पत्थर की कुंडी रखते हैं, उसमें डालते हैं। उसे कौआ आकर खाये। कौआ अकेला नहीं खाता। कौआ दो पाँच-पच्चीस (दूसरे कौए को) बुलाकर खाता है। ऐसे आचार्य – 'पद्मनंदि आचार्य' दिगम्बर मुनि संत जंगल में रहते थे, (उन्हों ने) दान के अधिकार में वर्णन करके ऐसा बताया कि, जैसे कौई अकेला नहीं खाता, वैसे पूर्व में तेरी आत्मशांति जली थी। आत्मा का धर्म जला

था, उसमें तुझे पुण्यभाव हुआ था। समझ में आया ? पूर्व में जो पुण्यभाव हुआ था, उस समय आत्मा की शांति जली थी।

भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल अकषायस्वभाव, उसमें जितना शुभभाव उत्पन्न होता है, उतना आत्मा की धर्म की शांति का नाश होता है। आहा..हा... ! समझ में आया ? ऐसे पुण्य से तुझे कोई पैसे आदि मिले हो, वह तेरा जला हुआ पुण्य है और उसके फल में यदि अकेला खायेगा और दान में राग मंद करके, दानादि में, धर्म प्रभावना आदि में नहीं खर्च करेगा तो कौए में से जायेगा। कौआ अकेला नहीं खाता, सब मिलकर खाते हैं – ऐसे तेरा पूर्व का पुण्य जला हुआ पुण्य है। पुण्य के फल में भी राग मंद नहीं करके, अकेला भोगने में पाप करेगा तो कौएमें से भी (जायेगा)। उसमें क्या न्याय लिया ? कि, पूर्व में तून पुण्य किया था, उसमें तेरे आत्मा की शांति जली थी। समझ में आया ? भाई ! (पुण्य के फल में) बाहर में पाँच-दस लाख मलिते हैं, वह दिखते हैं। भाई ! बाहर में पैसे दिखते हैं, पाँच-दस लाख, पच्चीस लाख (दिखता है) वह पूर्व के पुण्य में शुभभाव था, आत्मशांति से विरुद्ध भाव था। ऐसे शुभभाव से पुण्य बँधा और पुण्य के फल में तुझे यह सामग्री चलती है उसमें हर्ष मानना, मैंने किया, मैंने चलाया, हम हैं तो दुकान, मकान सब चलते हैं। भाई ! क्या होगा ? हर्ष न कर, भगवान ! हर्ष न कर, भाई !

अपना चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आत्मा की शांति में एकाग्र होकर प्रसन्नता प्राप्त करना, उसे छोडकर पूर्व के पुण्य के फल में प्रसन्नता करना, वह तो मिथ्यादृष्टि का भाव है। समझ में आया ? आहा..हा... ! देखो ! हैं तो गृहस्थ में रहनेवाले, परन्तु वस्तु की स्थिति का वर्णन जैसे शास्त्र में करते हैं, वैसे 'छहढाला' में सादी सरल हिन्दी में किया है।

'हे आत्मार्थी प्राणी ! (पुण्य-फलमांहि) पुण्य के फल में...' शरीर में निरोग रहना, वह पूर्व केपुण्य का फल है। पथ्य खाये तो हम शरीर को बराबर निरोग रख सकते हैं, ऐसा कभी है नहीं। समझ में आया ? पथ्य खाये, ऐसा खाये तो हमारा शरीर निरोग रहे। ऐसा है नहीं। शरीर में निरोगता का रहना(वह) पूर्व का पुण्य बँधा हो उसका फलहै। उसमें अभिमान करना कि, हम बराबर पथ्य खाते हैं, शरीर में निरोगता रखने का उपाय करते हैं तो निरोगता रहती है।

(यहाँ) ना कहते हैं। भगवान ! ऐसा मत कर। समझ में आया ? तू हर्ष मत कर, हर्ष मत कर। उसमें हर्ष करने से आत्मा की शांति लुट जाती है, जल जाती है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ... पैसा हो और हर्ष न करे, ऐसा कैसे हो सकता है ?

उत्तर :- धूल में पैसा हो तो हर्ष (हो)। चक्रवर्ती को छह खंड का राज्य था। छह खंड का राज्य चक्रवर्ती को था। हमारा नहीं, हमारा नहीं। ये तो पूर्व के पुण्य का फल(है), वह पुण्य जला तो मिला है। अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि, मुझे मिला। शास्त्रकार ऐसा कहते हैं कि, तेरा पूर्व पुण्य की लोन लेकर आया था। वह लोन जल गई तो मिला है। क्या (कहा) ? पूर्व की पुण्य की लोन लेकर आया था, अन्दर पडी थी। जैसे किसी के पास पाँच लाख की लोन हो, पाँच लाख बटा दिया और पाँच लाख आया। पाँचसो हजार, पाँच लाख में पाँचसो हजार आते हैं न ? वह कहता है, मेरे पास पाँचसो हजार आये। पाँचसो हजार यानी पाँच लाख आये। शास्त्र कहते हैं कि, तू पूर्व की तेरी पुण्य की लोन लेकर आया था वह लोन जल गई। वह लोन जल गई तो तुझे दिखने में आता है। वकील ! आहा..हा... !

कहते हैं, पूर्व के पुण्य के कारण जो चीज़ मिली, वह पुण्य जलता है और दिखता है, उसमें अभिमान मत करना, हर्ष मत करना, भैया ! वह जड़ की पर्याय है, मिट्टी की, पुद्गल की पर्याय है, तुझे किसमें हर्ष करना है ? तेरा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। आनन्द का अन्तर संतोष प्रकट कर। राग से पृथक कर, अपने आत्मा में शांति का संतोष प्रकट कर। वह तुझे प्रसन्न होने का हेतु है। बाहर की लक्ष्मी में प्रसन्नता मानना, वह तो मूढ जीव का लक्षण है। समझ में आया ?

'**पाप के फल में द्वेष न कर...**' पूर्व का पाप का फल आया और शरीर में रोग (हुआ)। समझ में आया ? अनुकूल का वियोग, प्रतिकूलता का संयोग (हुआ) बांझपना, कुँवारापना, कुटुम्ब नहीं, कबीला नहीं, लक्ष्मी नहीं। एक महिने में पचास रूपये की भी कमाई नहीं - ऐसी प्रतिकूलता पूर्व के कोई पाप के कारण से हो (तो भी) धर्मी विषाद नहीं करते, खेद नहीं करते। समझ में आया ? खेद तो अपना धर्म न हो, तभी खेद होता है। अरे... ! आज हमारी एकाग्रता शांति न हुई। संकल्प, विकल्प की जाल में हम हमारे आत्मा में एकाग्र नहीं रह सके। उसका

खेद हो, परन्तु प्रतिकूलता में ज्ञानी को खेद होता नहीं। प्रिय में प्रिय पुत्र मर जाये, स्त्री मर जाये। ऐसी चीज़ जो है (वह) पाप के उदय में ऐसा प्रतिकूल संयोग आता है, अनुकूल चला जाता है, उसमें आत्मा को हर्ष, संतोष मानना नहीं। उसमें हर्ष और खेद नहीं करना। समझ में आया ?

'रत्नकरंड श्रावकाचार' में लिया है कि, सम्यग्दृष्टि श्रावक ऐसा विचार करते हैं कि, मेरी आत्मसंपदा शुद्ध आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान की शांति मेरे पास है तो मुझे बाहर की संपदा से क्या काम है ? 'संमतभद्राचार्य'ने 'रत्नकरंड श्रावकाचार' बनाया है। 'रत्नकरंड श्रावकाचार'। रत्न का करंडिया (टोकरी) ऐसे भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसकी दृष्टि ओर ज्ञान किया है और उसमें श्रावक स्थिरता करते हैं, वही उसका रत्नकरंड है। आहा..हा...! समझ में आया ? बाहर की संपदा का मुझे क्या काम है ? मेरी शांति (में), मेरे में एकाग्र होता हूँ और मेरी अन्तर में धर्म की - शुद्धि की वृद्धि होती है तो लक्ष्मी से क्या काम है ? और अन्तर की शुद्धि की वृद्धि न हो तो भी लक्ष्मी से मुझे क्या काम है ? समझ में आया ? लेकिन अभी तो लक्ष्मी ही सर्वस्व हो गई (है)। क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु :- आदर्श जीवन।

उत्तर :- जीवन ! अच्छा ! यहाँ ना कहते हैं।

मुमुक्षु :- अंग्रेजी में कहते हैं।

उत्तर :- अंग्रेजी को कब भान था।

मुमुक्षु :- शब्द तो लिखते हैं।

उत्तर :- हाँ, लिखे होते हैं ना, अज्ञानी मूढ तो बहुत लिखते हैं न !

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर तीर्थंकरदेव फरमाते हैं कि, श्रावक सम्यग्दृष्टि आत्मा की शांति का संतोष प्रकट करनेवाले, परचीज़ में संतोष मानते नहीं और प्रतिकूलता में उसे खेद, दुःख होता नहीं। हो, आनेवाली-जानेवाली चीज़ हो (वह) उसके कारण से आती-जाती है - ऐसा सम्यग्दृष्टि-धर्मी को हर्ष और विषाद अंदर में होता नहीं। ऐसे तो नाम धराये, हम श्रावक हैं। नाम धराने से क्या हुआ ? थैली मं चिरायता भरा हो। क्या कहते हैं थैली ?

थैली... थैली। चिरायता भरा और उपर लिखा शक्कर। क्या चिरायता (-चिरायता) मीठा हो जायेगा ? ऐसे (कहे कि), हम श्रावक हैं। श्रावक क्या ? नाम लिखा है तो अन्दर मीठास हुई है या नहीं ? आत्मा विकार और शरीर के संग से भिन्न (है), अपनी दृष्टि और ज्ञान किये बिना जितना श्रावकपना नाम धराते हैं, वह अन्दर में चिरायता भरी है और उपर से नाम शक्कर लिखा है, ऐसी बात है। समझ में आया ?

यहाँ 'दौलतरामजी' कहते हैं, देखो ! **'पाप फल में द्वेष न कर...'** अरे... ! मुझे रोग आ गया, मेरा शरीर जीर्ण हो गया, लक्ष्मी चली गई, पुत्र मर गया, स्त्री जलकर मर गई, मकान जलगया, उस समय वीमावाल छूट गया। सब एकसाथ (हुआ)। यहाँ मकान जला, वहाँ वीमावाला चला गया। क्या कहते हैं ? वीमा। वीमा लेते हैं न ? वहाँ वीमावाला भाग जाये, यहाँ दुकान जल जाये, घर पर स्त्री जल जाये, पुत्र मर जाये, पुत्री का (पति मर जाये)। शरीर में रोग (आये)। समझ में आया ? और (पैसे) गाडे हो, पूर्व के पुण्य के कारण से पैसा होता है न ? (पैसे) गाडे हो (उसका) कोयला हो जाये, धूल हो जाये। ऐसा कहते थे। 'दामनगर' के पास 'लाखणका' गाँव है। एक भावसार था। भावसार में काठी... काठी होते हैं न ? हमने तेरह हजार रूपये गाड़े थे। पहले की बात है, हाँ ! ५०-६० वर्ष पहले की बात है। तेरह हजार। वह नहीं कहता था ? भाई ! भावसार। उसने कहा, मैंने गाडे थे। दो-चार वर्ष के बात जब दुष्काल पडा, खोदने लगे तो धूल (निकली)। पूर्व के पुण्य बदले तो गाड़ा हुआ (दन भी) धूल हो जाता है। और पूर्व के पुण्य के कारण धूल पैसा हो जाती है। समझ में आया ? पुण्य-पाप के फल में धर्मी को हर्ष, संतोष होता नहीं। जड़ की पर्याय में हर्ष मानना, तो उसने जड़ में अपने को माना। अपने आत्मा में आनन्द है, उसको तो माना नहीं। समझ में आया ?

पुण्य और पाप **'पुद्गल की पर्यायें हैं।'** जड़ की पर्याय हैं। जिसने अजीव को भिन्न माना उसे अजीव की अनुकूल-प्रतिकूलता की सामग्री में हर्ष-शोक होता नहीं। समझ में आया ? **'पुद्गल की पर्याय हैं। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती हैं...'** 'चलती-फिरती छाया है' - ऐसा आपकी हिन्दी में कहते हैं ना ? चलती फिरती छाया। एक व्यक्ति था, वह कहता था, समझे ? चलती फिरती छाया है। समझ में आया ?

हम 'जयपुर' में थे न ? 'जयपुर' दीवान के बंगले में हम उतरे थे। (एक मुमुक्षु) थे, वे हमारे साथ व्याख्यान में जाते थे। वहाँ एक वृद्ध आदमी, बहुत वृद्ध था, ८०-८५ वर्ष का था, भीख मांगता था, भीख। 'जयपुर' बजार में झवेरी की दुकान (थी)। उसका नाम भी कुछ था। समझे ? उसका पुत्र। झवेरी की दुकान (थी)। हैरान हो गया, भिखारी (होकर) भीख मांगता था। ८०-८५ वर्ष की उम्र थी। पूर्व का पुण्य फिरे (तो) पीछे पाई भी न रहे। तेरी व्यवस्था और तेरी होशियारी से रहता नहीं। उसमें कितनी होशियारी काम करती है ? चतुराई... चतुराई ! भाई ! वह पुद्गल की पर्याय है, चलती-फिरती छाया है। आये और जाये। धूल आती है न ? धूप। छाया आती है और जाती है। वह तो पौद्गलिक पर्याय आती और जाती है, तेरे आत्मा के साथ उसका सम्बन्ध नहीं। धर्मी जीव को पुण्य-पाप के फल में हर्ष-विषाद होता नहीं। हर्ष-विषाद करे तो उसके आत्मा की शांति जलती है।

'**नष्ट हो जाती है और पुनः उत्पन्न होती है।**' एक भव में ऐसा बहुत हो जाता है। क्षण में गरीब हो, पाँच वर्ष तवंगर हो जाये, फिर से दस वर्ष भिखारी हो जाये। ये क्या ? समझ में आया ? वह तो पूर्व की पर्याय का फल है। आत्मा में वह है नहीं। जिसको सम्यग्दर्शन और आत्मा की प्रतीति हुई ऐसे धर्मीजीव को पुद्गल की पर्याय में, चलती-फिरती छाया में हर्ष-शोक होता नहीं। समझ में आया ?

'**अपने अन्तर में निश्चय से - वास्तव में...**' अब क्या कहते हैं ? देखो ! अरे... ! भाई ! '**अपने अन्तर में निश्चय से-वास्तव में (लाख बात की बात)...**' देखो ! '**लाखों बातों का सार इसी प्रकार ग्रहण करो...**' '**पुण्य-पापरूप समस्त जन्म-मरण के द्वन्द्वरूप विकारी मलिन भाव...**' देखो ! आत्मा में शुभ और अशुभराग होता है, वह विकारी भाव जगत द्वंद-फंद है। आहा..हा... ! क्या (कहा) ? शुभ और अशुभभाव होता हैं, वह जगत का द्वंद-फंद है। उससे तो पुद्गल बँधता है और उससे बाह्य की सामग्री का मिलना अथवा बिछुडना होता है।

'**पुण्य-पापरूप समस्त जन्म-मरण के द्वन्द्व (राग-द्वेष) रूप विकारी मलिन भाव तोड़कर...**' अरे.. ! आत्मा ! देखो ! संबोधन करते हैं। शुभ-अशुभभाव को छोड़कर शुभ-

अशुभभाव का फल बंध, उसका फल संयोग, तीनों को दृष्टि में छोड दे। समझ में आया ? शुभ-अशुभभाव, उसका फल बंध, उसका फल संयोग, सुख-दुःख संयोग छह प्रकार हुए। शुभ-अशुभभाव-१। शुभ-अशुभभाव का बंध पुण्य-पाप-२ और पुण्य-पाप का फल अनुकूल-प्रतिकुल संयोग-३। (इन) छह चीज से तेरी रुचि हटा दे। आहा..! समझ में आया ? तुजे आत्मदर्शन और आत्मशांति चाहिए तो, अनन्तकाल से नहीं मिली ऐसी स्वनिधि, उसको पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर, पुण्य-पाप का बन्ध का भाव का भी हर्ष-शोक छोड़कर और उसके फल में हर्ष-शोक छोड़कर।

'तोड़कर सदैव अपने आत्मा का ध्यान करो।' लो ! देखो ! गृहस्थ को कहते हैं ? गृहस्थ को कहते हैं। अभी तो सम्यक्चारित्र, व्रतादि होते हैं। पीछे लेंगे। परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में सम्यग्ज्ञान हुआ, बाद में उसे व्रत का परिणाम होता है। सम्यक्चारित्र, व्यवहारचारित्र। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना व्यवहारचारित्र-फारित्र, अणुव्रत और व्रत लेते हैं, वे सब एक बिना के शून्य हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि - हे जीव !

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;

तोरि सकल जगदंद-फंद, नित आतम ध्याओ।

भगवान आत्मा पुण्य-पाप का विकल्प से रहित, मेरी चीज शुद्ध आनन्द है - ऐसी दृष्टि कर, उसका ध्यान करो। यही कर्तव्य मनुष्यपने में करने लायक है। नित्य ध्याना सदैव ? फिर खाने-पीने का काम कब करना ? इसमें तो यह कहते हैं, देखो ! **'(नित) सदैव अपने आत्मा का ध्यान करो।'** भाई ! फिर कमाना कब ? दुकान कब चलानी ? वह तो पहले कहा - काम सकते नहीं, खो सकते नहीं। वह तो पूर्व के पुण्य-पाप से होता है। कहो, भाई ! क्या है ? बराबर ध्यान रखते हैं। (एक भाई) कहते थे, ध्यान रखा इसलिये दुकान चली। धूल में भी चली नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- सामने से आते हैं।

उत्तर :- क्या सामने आते हैं ? बैठे-बैठे आते हैं। खाना क्या ? आत्मा क्या खा सकता है ? उसकी तो यहाँ ना कहते हैं। वह तो जड़ की क्रिया है। पैसा आना जड़ का फल है। समझ में आया ? वह क्या कर सकता है ? एक रजकण को भी हिला नहीं सकता। परमाणु जड़ है, अजीव है, यह आँख जड़ है। आँख की पलक को ऐसे करना वह आत्मा का अधिकार है ही नहीं। आहा..हा... ! ऐसे-ऐसे होती है या नहीं ? वह आत्मा से नहीं (होती) आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह तो सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, सो इन्द्र की उपस्थिति में दिव्यध्वनि द्वारा भगवान की आवाज आती थी, अरे... ! आत्मा ! तेरे अलावा एक रजकण की भी क्रिया तुम कर सकते नहीं। समझ में आया ? वह आता है न ? भाई ! 'द्रव्यसंग्रह' में टीका में नहीं आता ? हाथ की क्रिया तुम नहीं कर सकते। राग कर सकता है, द्वेष कर सकता है, विकार कर सकता है। लेकिन क्या हस्त आदि की क्रिया तुम कर सकते हो ? यह तो जड़ है। जड़ की पर्याय (पर) तेरा अधिकार है कि तुम बना सके ? मूढ की मान्यता ऐसी है कि, मैं जड़ की बनाऊ, शरीर की बनाऊ, दुकान की बनाऊ, लक्ष्मी की बनाऊ। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- करना क्या ?

उत्तर :- करना, आत्मा की समझ करके एकाग्रता करना वह करना। क्या करना है ? मर जाना है क्षण में ? जाओ.. ! दुर्गति चौरासी के अवतार में।

कहते हैं, लाख बात की बात जग द्वंद-फंद। पुण्य-पाप का भाव होता है, उसकी भी रुचि छोड़कर। अपना बंधन ठीक है, पुण्य हो तो ठीक बंधन पडेगा। छोड दे रुचि ! और पाप हो तो अशुभ बंध पडेगा। उसमें है न ? देखो ! है न ? देखो ! पुण्य... पुण्य। देखो ! उसमें लिखा है न ? पुण्य में वह आराम से सोता है। आरामकुर्सी जैसा

किया है। सोफा। देखो ! क्या कहते हैं ? ऐसी भाषा हमें नहीं आती। आरामकुर्सी लो न ! जैसे आराम (मिल रहा है)। ऐसे बैठा है, स्त्री ऐसे बैठी है। कुर्सी पडी है, पुत्र भी ऐसे होशियार। ये सब पुण्य का फल। उपर पंखा घूम रहा है। देखो ! दिखाव ठीक किया है।

(यहाँ) पाप (दिखाया है)। एक आदमी है। बेचारे ने कपडा ऐसा रखा है। एक पुत्र ऐसे है,एक पुत्र वैसे है, उसकी पत्नी खाना बना रही है, मश्किल से बना रही है। कपडे टंग रहे हैं, एक कुर्सी... क्या कहते हैं ? छाता। छाता भी टुटा हुआ है। है या नहीं ? छाता ठीक नहीं है। टुटा हुआ छाता है। तार टुट गये हैं। पूर्व के पाप के कारण ऐसी अवस्था बने, उसमें आत्मा का अधिकार है नहीं। हम बराबर विचिक्षण है और व्यवस्था करनेवाले हैं तो ऐसी व्यवस्था रहती है। भगवान कहते हैं कि, मूढ है, भैया ! एक पलक भी घूमाने का तेरा अधिकार नहीं है। भाई ! तूने जड़ को, चैतन्य को भिन्न जाना नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

ये साँस चलती है वह भी आत्मा का अधिकार नहीं। ये साँस जड़ की क्रिया है। अधिकार ही नहीं, वर्तमान अधिकार कहाँ से लाये ? वह तो परमाणु की क्रिया है, जड़ का - रजकण का स्कंध है। अन्दर में जब यहाँ से साँस निकल जायेगी, नाभि से (निकलेगी)। किसी को ख्याल आयेगा कि नाभि से साँस हट गई है। तेरा अधिकार हो तो नीचे उतार दे न ! साँस की क्रिया- उपर जाना, नीचे जाना जड़ के कारण से है।

मुमुक्षु :- पूरी जिंदगी के पहले हिस्से में अभ्यास किया हो...

उत्तर :- वर्तमान में भी होता नहीं। मूढ मुफ्त में मानता है, भगवान तो ऐसा कहते हैं।

पाँछ इन्द्रिय, मन-वचन-काया, साँस। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि, एक समयमात्र भी

जड़ की दस प्राण की क्रिया तेरे अधिकार की बात है नहीं। दस प्राण है न ? पाँच इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया जड़, साँस और आयुष्य। उसमें साँस आती हैं न ? दस प्राण में साँस आती है या नहीं ? पाँच इन्द्रियां, मन-वचन-काया, साँस और आयुष्य। ये साँस जड़ है। आहा..हा... ! दुनिया में नहीं कहते हैं ? साँस तेरा रिश्तेदार नहीं, ऐसा नहीं कहते ? आपमें कहते हैं या नहीं ? साँस भी साथ नहीं देती हैं। साँस भी साथ नहीं देती। हमारे काठियावाड में कहते हैं, साँस तेरी रिश्तेदार नहीं। ये साँस तो जड़ है। जड़ की क्रिया होना जड़ से होती है, तेरे से नहीं। जब रुक जायेगी तुम नहीं कर सकते तो अभी चलती है तो तेरे से नहीं (चलती)। आहा..हा... ! कभी सुना नहीं।

'जड़ और चैतन्य दोनों प्रकट स्वभाव भिन्न, जड़ और चैतन्य दोनों प्रकट स्वभाव भिन्न।' दोनों के प्रकट स्वभाव भिन्न हैं, भाई ! सम्यग्दृष्टि जीव जड़ की क्रिया का अभिमान नहीं करते कि, हमसे होता है। ऐसा नहीं करते।

मुमुक्षु :- करे लेकिन उसका आभमान नहीं करते।

उत्तर :- कर ही नहीं सकते। करे क्या ? अनासक्ति कहते हैं न ? अनासक्ति योग)से करो)। झूठ बात है। कर सकते नहीं, फिर अनासक्ति कहाँ से लाया ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- ना, ना। यहाँ ऐसी बात है ही नहीं। यहाँ तो भगवान कहते हैं, भैया ! तेरा ज्ञानस्वरूप है। उसे ज्ञाता होकर जान। पर की क्रिया होती है वह तेरे अधिकार की बात नहीं। जड़ की होती है तो हो, न होती हो तो न हो। तेरे अधिकार की बात है नहीं। तेरे अधिकार की बात हो तो पक्षपात होता है, (तब) क्यों कर सकता नहीं ? भाषा भी एं.. ए.. हो जाती है। समझ में आया ?

कहते हैं, सदैव आत्मा का ध्यान करो। दृष्टि आत्मा पर लगाओ। भगवान शाश्वत चैतन्यमूर्ति है। समझ में आया ? तेरी चीज़ तो शाश्वत सच्चिदानन्द मूर्ति है। ध्रुव सत् है, ध्रुव सत् है। चिदानन्द स्वभाव की दृष्टि लगाओ, उसका ध्यान करो। यही सम्यग्दृष्टि का कर्तव्य है। बीच में रागदि आओ, शरीरादि की क्रिया हो, उसका सम्यग्दृष्टि कर्ता होता नहीं। बहुत सूक्ष्म

बात, भाई ! कहो, समझ में आया ? (इनके) जैसे होशियार आदमी हो, वह कर सकते होंगे या नहीं ? (नहीं कर सकते हो तो) आपको वहाँ भाई क्यों बुलाते हैं ? आओ... आओ.. भाई ! (ऐसा कहेत हैं)।

मुमुक्षु :- हिंमतवाले आदमी का काम है।

उत्तर :- हिंमतवाला, धूल में हिंमत रखे। वीर्य उसके पास रहा, पर में कहाँ जाता है ? शरीर की क्रिया में वीर्य काम नहीं करता। शरीर की क्रिया में आत्मा का वीर्य काम नहीं करता तो पर में क्या कर सकता है ? तत्त्व की खबर नहीं। सत्य तत्त्व क्या है और कैसे होता है उसका ज्ञान नहीं और ज्ञान बीना सब (झूठ है)। ज्ञान नहीं है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं न ? सच्चा ज्ञानवंत हो वह जड़ की क्रिया अपने से होती है, ऐसा मानते नहीं। समझ में आया ? 'अपने आत्मा का ध्यान करो।' समझ में आया ?

भावार्थ :- 'आत्मार्थी जीव का कर्तव्य है कि धन, मकान, दुकान,...' तीनों ने अंत में 'न' आया। **'धन, मकान, दुकान...'** घर का मकान करते हैं न ? होशियार आदमी दो लाख, पाँच लाख का बड़ा (मकान बनाये)। यहाँ खिडकी, यहाँ दरवाजा, ऐसा... किसी का किया हुआ मकान हो तो पसन्द नहीं पडता। खुद का नया (बनाना हो तो) अपने को जैसे ठीक पडे वैसे खिडकी, दरवाजे (बनाता है)। (फिर कहता है) हमने मकान बनाया है। हम कूर्सी लगाकर आठ घण्टे सामने बैठे थे। कारीगर को कहते थे ऐसा करो, ऐसा करो। कौन करे ? धूल करे। भाई ! धूल करे। धूल से होता है, तेरे से नहीं।

'धन, मकान, दुकान, कीर्ति...' हमारे पिताजी की इतनी कीर्ति नहीं थी, हमने अपनी महेनत से लक्ष्मी कमाई है और मेहनत से कीर्ति मिली है। मूढ है। तेरी मेहनत कहाँ से आयी ? वह तो पूर्व का पुण्य है, उससे कीर्ति आई और कीर्ति तो जड़ की पर्याय है। आवाज होती है कि, ये आदमी ऐसा है। वह तो जड़ की आवाज है। तेरे में तेरी कीर्ति कहाँ से घुस गई ? समझ में आया ? भाई ! आहा..हा... ! कीर्ति हो। बापनी आरती उतारीने दहाडो सारो करे तो कीर्ति अच्छी हो। (बाप की आरती उतारकर दहाड़ा अच्छा करें तो कीर्ति अच्छी हो)

मुमुक्षु :- कीर्ति बढ़ी गई...

उत्तर :- बढे तो वह तो पूर्व का पुण्य हो तो बढे। नहीं तो ऐसा भी कहे, पुत्र की शादी नहीं हुई इसलिये करते हैं, ऐसा बोले। ये सब आपने सुना नहीं ? लडका कुँवारा है, बाप के नाम से पाँच हजार का खर्च करता है, बाद में लडकी लेनी है - ऐसा भी बोलते हैं। भाई ! ये सब सुना है या नहीं ? (ये भाई) तो संसार में बराबर गहराई में ऊतरे हैं न ! आहा..हा... ! हमने तो देखा है, हम उसमें घुसे नहीं है। समझ में आया ?

कहते हैं, '**निरोगी शरीरादि पुण्य के फल हैं,...**' समझ में आया ? आँख रहना वह पुण्य का फल है, ऐसा कहते हैं। (ये भाई) आँख गँवाकर आये है न ? नयी डाली या नहीं ? 'अहमदाबाद' गये थे। मोतिया उतारने थे तब उपर की कणि अन्दर घूस गई, डॉक्टर से घुस गई, हाँ ! डॉक्टर से घुस गई ? नहीं ? वह घुसने की थी घुस गई, वह जड़ की पर्याय है, कोई से घुसती नहीं। डॉक्टर ने कहा, निकाल दो, नहीं तो दूसरी आँख चली जायेगी। निकाल देना पडे, क्या करे ? वह कहाँ अपना अधिकार है ? जड़ ऊपर, कोई एक रजकण ऊपर भी अपना अधिकार है नहीं।

'**उनसे अपने को लाभ है तथा उनके वियोग से अपने को हानि है - ऐसा न माने;...**' देखो ! धन, मकान, दुकान, कीर्ति, निरोगी शरीरादि का वियोग हो जाये। दुकान का वियोग, दुकान टूट जाये, लक्ष्मी चली जाये, कीर्ति चली जाये, रोग आ जाये तो उससे हानि है, ऐसा धर्मी मानते नहीं। आहा..हा... ! कहो, समझ में आया ? ये तो कितनी मन्नत करते हैं। महावीरजी, पद्मपुरी, पैसा मिले, लड़का मिले। मूढ है, वह जैन है ही नहीं।

जैन जिसकी दृष्टि होती है, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि, तेरा आत्मा तेरी सम्पदा से तेरे पास है। तेरी सम्पदा बाहर में है नहीं। ऐसी दृष्टि जब तक न करे और बाहर की लक्ष्मी भगवान को मानने से मिलती है, ऐसे मिलती है केसरियाजी में केसर चडाने से मिलता है, बालक का रक्षण होता है - मूढ है, मिथ्यादृष्टि है (उसे) जैन की खबर नहीं। जैन परमेश्वर आत्मा और जड़ को जुदा कहते हैं। और जुदा की पर्याय अपने से मानना उसका नाम ही मिथ्यात्व है।

'**क्योंकि परपदार्थ सदा भिन्न हैं, ज्ञेयमात्र है,...**' देखो ! अपने आत्मा से परपदार्थ तो

बिलकुल भिन्न हैं, जानने लायक हैं। देखो ! '**ज्ञेयमात्र हैं,...**' जानने लायक हैं। मैं रखूँ, छोड दूँ या प्रतिकूलता में खेद मानना ऐसा चीज़ में है नहीं। उस चीज़ में ऐसा है ? क्या प्रतिकूलता उस चीज़ में है ? रजिस्टर किया है ? यह अनुकूल है ऐसी उसमें छाप पडी है ? उसमें छाप है-ज्ञेय की। समझ में आया ? यह जानने लायक है, ऐसा जानते हैं। धर्मी जीव उसे कहते हैं, अनुकूल-प्रतिकूल जड़ की पर्याय में जानने लायक जानते हैं। मुझे अनुकूल है और प्रतिकूल है, ऐसा मानते नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि जीव पर की अनुकूलता-प्रतिकूलता अपने में ऐसा मानते ही नहीं। वैसे कहना कि, हम जैनी हैं, धर्मी है और अनुकूल-प्रतिकूल में खेद.. खेद.. खेद (करता है)। पसीना उतर जाये। हमारी इतनी इज्जत गई, हमारा इतना गया, समय बदल गया, समय बदले, तब सब बदल जाता हैं। हमारा समय ! तेरा समय क्या ? तेरा समय तो तेरे आत्मा के पास है। समझ में आया ? भाई !

'**किसी को अनुकूल-प्रतिकूल अथवा इष्ट-अनिष्ट मानना, वह मात्र जीवकी भूल है;...**' देखो ! बाहर की प्रतिकूलता में दुःख मानना, अनुकूलता में सुख मानना - वह तो ज्ञेय पदार्थ है, उसमें अनुकूल-प्रतिकूल है ही कहाँ ? सातवीं नरक के नारकी में, रौ-रौव नरक में समकिती नारकी पडा है, वहाँ भी आत्मा में आनन्द मानते हैं। समझ में आया ? रौ-रौव नरक में नारकी पडे हैं। सातवीं नरक में समकिती हैं। (फिर भी) दुःख नहीं मानते। जितना थोड़ा दुःख है वह अस्थिरता है, अस्थिरता मेरी चीज़ नहीं, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा सातवीं नरक में रहे हुए धर्मी-सम्यग्दृष्टि अपने को ऐसा मानते हैं। कहो, समझ में आया ?

'**इष्ट-अनिष्ट मानना, वह मात्र जीव की भूल है;...**' यह चीज़ इष्ट है, यह चीज़ अनिष्ट है, उसमें इष्ट-अनिष्ट तो कोई है ही नहीं। विष्टा अनिष्ट मानते हैं, भूंड इष्ट मानकर खा जाता है। किसको इष्ट-अनिष्ट मानना ? वमन करते हैं, कुत्ता वमन को खा जाता है, किसको इष्ट-अनिष्ट मानना ? इष्ट-अनिष्ट कोई चीज़ है ही नहीं। आत्मा जाननेवाला है, जगत को जानना है (कि), ऐसा हुआ। मेरे में हुआ ऐसा धर्मी मानते नहीं। आहा..हा... ! धर्मी नाम धरानेवाले, धर्मी नाम धराये और (बोले कि) हमें ऐसा हुआ है। मूढ है, कहते हैं, तुझे धर्म की खबर नहीं। '**इसलिये पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए।**'

'**यदि किसी भी परपदार्थ को जीव भला या बुरा माने तो उसके प्रति राग या द्वेष,**

ममत्व हुए बिना नहीं रहता।' क्या सिद्धांत है ? आत्मा अपने अलावा, आत्मा का स्वभाव शुद्ध है वही भला (है), और विकार है वही बुरा है। बस ! इतना। क्या कहा ? अपना आनन्द, ज्ञानस्वभाव है वह अपना भला है और विकार भाव है वह अनिष्ट अर्थात् बुरा है। उसके अलावा दूसरी चीज़ को बुरी-भली माने तो उसके प्रति राग-द्वेष, ममता अर्थात् मिथ्यादृष्टि हुए बिना रहती नहीं। अरे.. ! मुझे अच्छी (परिस्थिति) हो तो ठीक, प्रतिकूलता हो तो ठीक नहीं। ऐसे माना (वह मूढ है)।

'जिसने परपदार्थ - परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को वास्तव में हितकर...' देखो ! परपदार्थकी व्याख्या क्या की ? परद्रव्य। आत्मा के अलावा कर्म, शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब सब परद्रव्य (है)। परक्षेत्र-इस आत्मा के क्षेत्र के अलावा सब परक्षेत्र है। काल-अपनी पर्याय के अलावा (सब) पर। भाव-अपने गुण के अलावा पर का भाव। उन्हें **'वास्तव में हितकर तथा अहितकर माना है, उसने अनन्त परपदार्थों को राग-द्वेष करने योग्य माना है।'** एक पदार्थ में प्रीति की और ठीक है - ऐसा माना, (उसे) सारे जगत की ठीक है - ऐसा अनन्तानुबंधी का मान हुआ। समझ में आया ? क्या कहा ?

एक (पदार्थ) ठीक है तो सारी दुनिया उसकी प्रतीति में ठीक है, अनंतानुबंधी का मान आया। आहा..हा...! यह ठीक नहीं - (ऐसा माना) तो अनन्त चीज़ें ठीक नहीं, (वह) अनन्तानुबंधी का द्वेष आया। समझ में आया ? अनन्तानुबंधी, समझे ? अनन्त संसार का कारण। अनन्त संसार का कारण, एक परपदार्थ मुझे ठीक (है), तो ऐसे सब अनुकूल अनन्त (पदार्थ) ठीक (है)। उसे अनन्त का मान आया, मान नाम राग आया। समझ में आया ? एक चीज़ ठीक नहीं ऐसी अरुचि हुई (तो) सारी दुनिया ठीक नहीं, ऐसा द्वेष आया। अनन्तानुबंधी का क्रोध। समझ में आया ? है ? पुस्तक रखा है या नहीं ? भाई ! रखा है ? क्या लिखा है ? देखो ?

'परपदार्थ - परद्रव्य-परक्षेत्र...' ऐसे लेना। परकाल, परभाव को **'वास्तव में हितकर तथा अहितकर माना है...'** कोई भी एक चीज़ को हितकर माने या दूसरी चीज़ को अहितकर माने, **'उसने अनन्त परपदार्थों को राग-द्वेष करने योग्य माना है...'** सब चीज राग-द्वेष करने

योग्य है, ऐसा माना है। जानने योग्य है ऐसा माना नहीं। समझ में आया ? आहा..हा...! बडी सूक्ष्म बात है। संसार में ऐसा चलता होगा क्या ? यह तो किसे कहते हैं ? संसारी प्राणी को कहते हैं कि, भैया ! तुझे हित करना हो तो जगत की कोई भी चीज़ में यह ठीक और अठीक, ऐसी मान्यता छोड दे। तेरा आत्मा ही ठीक है, आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द है और उसमें जितना विकार उत्पन्न होता है, पुण्य-पाप दोनों जगत फन्द है, द्वंद्व है, वह अनिष्ट है। समझ में आया ? दूसरी कोई चीज़ अनिष्ट है ही नहीं। दूसरी कोई इष्ट नहीं और दूसरी कोई अनिष्ट नहीं। तेरा आनन्द शुद्धस्वभाव तुझे इष्ट नाम प्रिय, भला है और तेरे में पुण्य-पाप का भाव होता है, वह अनिष्ट और दुःखदायक है। समझ में आया ? दूसरी कोई चीज़ तो ज्ञेय है, वह कहाँ दुःख करती है ? वह पहले आ गया है। आस्रव दुःख का कारण है। नहीं आया ? पहले आया था न ? अजीवतत्त्व के बाद। आया था न ? आस्रव का नहीं आया था ? किसमें आया था ? कौन-सी गाथा ? पाँचवी है, देखो ! पाँचवी... पाँचवी (गाथा)।

'**रागादि प्रकट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।**' देखो ! दूसरी ढाल है न ? दूसरी ढाल, पाँचवी गाथा (है)। '**तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान;...**' यह अजीव की भूल (है)। शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ, शरीर का नाश हुआ तो मेरा नाश हुआ - वह अजीव की भूल (है)। मिथ्यादृष्टि अजीव को अपना मानता है। '**रागादि प्रकट ये दुःख देन**' है ? उसमें ३४ पन्ना है, पाँचवी गाथा है। रागादि अर्थात् शुभाशुभभाव '**प्रकट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।**' है या नहीं ? यह बात पहले आ गई है। रागादि, देखो अन्दर लिखा है न ? क्या कहते हैं ? तिजोरी रखी है।

मुमुक्षु :- बाहर में सुख है...

उत्तर :- ऐसा मूढ मानता है, ऐसा कहते हैं। तिजोरीमें से पैसा निकालने के लिये हाथ डालता है। है राग, है दुःख देन, उसे सुख चैन मानता है। राग है, दुःख देन। लिखा है ? '**रागादि प्रकट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।**' राग दुःख का कारण है, पुण्य-पाप दोनों, हाँ ! उसको सुख का कारण मानना मिथ्यादृष्टि का लक्षण आस्रव की भूल में है। यह आस्रव की भूल है। वह आस्रव को आस्रव मानता नहीं। समझ में आया ? थोड़े शब्द में बहुत

भर दिया है। गागर में सागर भर दिया है लेकिन विचार नहीं। ऐसे ही तोते की भाँति रटन किये जाये। अर्थ विचारे नहीं, उसका भाव विचारे नहीं।

कहते हैं, '**राग-द्वेष करने योग्य माना है और अनन्त परपदार्थ मुझे सुख-दुःख के कारण हैं ऐसा भी माना है।**' दो बात कही। जिसने अपने आत्मा के अलावा दूसरे में ठीक-अठीक माना तो अनन्त पदार्थ राग-द्वेष का कारण माना और सुख-दुःख का कारण माना। एक को सुख का कारण माना या एक को दुःख का कारण माना (तो) समस्त पदार्थों को सुख-दुःख का कारण माना। सुख-दुःख का कारण परपदार्थ है नहीं। उसका विकारी भाव ही दुःख का कारण है और अपना आत्मा ही आनन्द का, सुख का कारण है, दूसरी कोई बाह्य की चीज़ सुख-दुःख का कारण है नहीं। समझ में आया ? विचार नहीं (करते)।

'**इसलिये यह भूल छोड़कर...**' यह भूल छोड़कर '**निज ज्ञानानन्दस्वरूप का निर्णय करके...**' देखो ! शुभाशुभभाव - आस्रव ही दुःखरूप है। परपदार्थ दुःखरूप है ही नहीं। परपदार्थ को दुःखरूप मानना वह तो महाराग-द्वेष तीव्र हुआ और पर सुख-दुःख का कारण है, प्रतिकूलता रोग आया तो मुझे दुःख हुआ वह मूढ है। सब प्रतिकूलता को द्वेष का कारण माना। अनन्तानुबंधी का द्वेष का सेवन उसे हुआ। आहा..हा...! समझ में आया ? यह तो भाई ! वीतराग हो तब हो, ऐसा कोई माने। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन में सीखते हैं।

भगवान ! तेरी दृष्टि यदि आत्मा पर हो, धर्मी की दृष्टि तुझे हो तो धर्मी को बाह्य चीज़ सुख-दुःख का कारण है, ऐसी दृष्टि है नहीं। मान्यता की बात है न ? छोडने की बात तो बाद में आयेगी। अस्थिरता छूटे और स्थिरता हो जाये उसे तो चारित्र कहते हैं। यह तो मात्र मान्यता में विपरीतता है, उसे छुडाने की बात करते हैं।

मरते समय शरीर अनुकूल न रहे। आहा..हा...! अरे..! ये साँस ठीक नहीं चलती, ठीक चले तो मैं भगवान का स्मरण कर सकूं या आत्मा का ध्यान कर सकूं। शरीर विघ्न करता है ? एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था ? नरक में नारकी को जम लोग हैं न ? वे बांधते हैं। ऐसा बांधे (जैसे) गठडी बांधे। गठडी बांधकर अन्दर अग्नि का लोहे का सलिया डाल दे। नाक बंध। बाद में नीचे से जलाये, अग्नि जलाये उं..ह। नहीं कर सकता। समझ में आया ? ऐसी स्थिति,

प्रतिकुल संयोग है, वह आत्मा को छूटा नहीं। आहा..! भाई ! क्या कहा ? कितना प्रतिकूल संयोग ? एक तो नरक में जन्म लेना, शरीर ऐसा, रोग, उपर से परमाधामी आकर गठडी बाँधकर उसमें लोहे का सरिया डाल दे। उपर से लोहे का दस-दस मन का घन (गिराते हैं)। सुनो ! वह प्रतिकूलता है ही नहीं।

मुमुक्षु :- पाप का फल है।

उत्तर :- पाप के फल में प्रतिकूल संयोग हुआ परन्तु आत्मा में वह संयोग कहाँ छूआ है ? सूक्ष्म बात है। तत्त्व की बात उसने सुनी नहीं। उस समय भी आत्मा ज्ञानानन्द होकर अन्दर सम्यग्दर्शन प्रकट कर लेता है। क्या (कहा) ? इतना प्रतिकूल संयोग ! वह तो बाहर है, आत्मा में अन्दर कहाँ घूस गया है ? आत्मा तो अन्दर भिन्न है। ऐसा भगवान आत्मा पूर्व में कुछ सुना हो, मुनि ने आत्मा सुनाया हो कि, आत्मा तो आनन्द है। राजा-महाराजा कोई महापाप करके, सम्यग्दर्शन नहीं किया और यहाँ जन्म ले लिया। ऐसे गठडी बाँधते हैं और(जलाते हैं)। अरे...! ये क्या ? क्या है ये ? ऐसी चीज़ सदा रहेगी ? इससे छूटने की कोई चीज़ है या नहीं ? ऐसा अन्दर विचार करके क्षण में सम्यग्दर्शन पा लेते हैं। समझ में आया ? वह चीज़ प्रतिकूल नहीं मानते। वह तो छूटी भी नहीं। चाहे वह संयोग में हों। वह तो संयोग है। आत्मा अरूपी भगवान ज्ञानानन्द तो उससे भिन्न है। संयोगी की इतनी स्थिति में भी आत्मा उसमें दब गया है, ऐसा है नहीं। आहा..हा...!

मुमुक्षु :- ... हो तो मानता फिर जाये...

उत्तर :- यहाँ क्या कहते हैं ? नहीं होने देना तुम्हारे साथ में है ? भाई ! यह क्या कहे हैं ? दृष्टान्त पहले एकबार दिया था। उसके कारण से होता है, तुम्हारे कारण टिकता है ? क्या करना है तुमको ? ऐसा कहते हैं, भाई ! वह तो जो होता है, वह होता है। वह तो जड़ की अवस्था है। आत्मा को दु:ख का कारण बिलकुल नहीं। (यहाँ) क्या कहते हैं ? लेकिन किया नहीं, उसमें तुझे खेद होता है। वह नहीं होता है इसलिये खेद होता है, वह मूढता है, उसे कभी करना है। पैर चलाने हैं, दुकान बराबर करनी है, ऐसा करना है। भाई ! शरीर अच्छा हो तो ऐसा करना है, इनके जैसा चले, ऐसे पुत्र होना... यह सब भ्रम है। कौन कर सका है ? पर का कौन

कर सकता है ? शरीर की प्रतिकूलता क्या आत्मा को दु:ख का कारण है ? भगवान तो कहते हैं कि, तेरा अभिप्राय-मेरे में दु:ख हुआ है, यह तेरा अभिप्राय दु:ख का कारण है। पर चीज़ दु:ख का कारण है नहीं। समझ में आया ? चिल्लाता है, पैर चलते नहीं। पैर चलता है न ? आत्मा नहीं चलता ? पहले कहा न ? अन्दर परिणमन नहीं है ? वस्तु भिन्न है तो भिन्न की दृष्टि करो। भिन्न की दृष्टि में प्रतिकूल संयोग रोकते हैं ? भिन्न की दृष्टि करने से प्रतिकूल संयोग रोकते हैं ? समझना पडेगा या नहीं ? चाहे जितना प्रतिकूल संयोग शरीर को हुआ, वह तो रजकण में हुआ है; आत्मा तो अन्दर से भिन्न है, भगवान आत्मा भिन्न है। उस समय भी अंतर्मुख होकर, बहिर्मुख का लक्ष्य छोड़कर मैं तो शुद्ध चिदानन्द स्वरूप हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। जानने... जानने. जानने... जाननेवाला (हूँ) उसमें दृष्टि लगा दी। सम्यग्दर्शन हो जाये। ऐसी प्रतिकूलता में सम्यग्दर्शन (हो जाये)। आत्मा में प्रतिकूलता है कहाँ ? कठिन बात, भाई ! समझ में आया ?

अनुकूल संयोग। समवसरण में अनन्त बार गया। राजकुमार आदि भगवान को सुनने गये। क्या हुआ उसमें ? अनुकूलता उसमें क्या ? बाह्य चीज़ में क्या है ? (लेकिन) माना कि, हमें अनुकूल है। बस ! बादशाह है। मूढ है। बादशाही तो तेरे अन्दर में पडी है। ज्ञानानन्द की संभाल नहीं की तो समवसरण में भी मिथ्यादृष्टि रहा। समझ में आया ? आहा..! और ज्ञानानन्द की संभाल की, तो ऐसी गठडी बाँधी उसमें सम्यग्दर्शन पा लिया, जन्म-मरण का नाश कर दिया। आहा..हा... ! परद्रव्य के साथ संयोग-वियोग मानना, वह तो उसकी कल्पना है। इसलिये कहते हैं, ऐसा छोड़कर '**ज्ञानानन्दस्वरूप का निर्णय करके स्वोन्मुख ज्ञाता रहना ही सुखी होने का उपाय है।**' विशेष कहेंगे, लो !

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)